आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 3/सितंबर 2026

Received: 02/10/2026; Revised: 05/10/2026; Accepted: 05/10/2026; Published: 10/10/2026

संत कनकदास के तात्विक पदों में दार्शनिक चेतना

डॉ.प्रभुसेन

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

हिंदी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय

मुक्तगंगोत्री, मैसूरु-06

डॉ.प्रभुसेन, संत कनकदास के तात्विक पदों में दार्शनिक चेतना, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 3/सितंबर 2026**,(317 -324)

https://doi.org/10.5281/zenodo.23924283

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

मुख्य शब्द :

कनकदास, तात्विक पद, मुंडिगे, द्वैत वेदांत, माया मीमांसा, जीव-ब्रह्म।

प्रस्तावना :

मध्यकालीन कर्नाटक का हरिदास आंदोलन भारतीय दर्शन के इतिहास में एक युगांतकारी घटना थी, जिसने दर्शनशास्त्र की अमूर्तता को लोकभाषा के माध्यम से व्यावहारिक जीवन में उतारा। प्रस्तुत शोध आलेख 16वीं शताब्दी के महान हरिदास संत-कवि कनकदास के 'तात्विक पदों' और 'मुंडिगे' (Mystical Riddles) का एक सघन दार्शनिक अनुशीलन प्रस्तुत करता है। कनकदास का साहित्य केवल भावुकतापूर्ण भक्ति का प्रस्फुटन नहीं है, बल्कि वह आचार्य माध्वाचार्य के द्वैत वेदांत का एक गहन, अनुभूतिमूलक और व्यावहारिक रूपांतरण है। उन्होंने 'माया', 'जीव-ब्रह्म संबंध', 'प्रकृति-पुरुष विवेक' और 'मोक्ष मार्ग' जैसे अमूर्त विषयों को लोक-प्रतीकों और मुहावरों के माध्यम से जनमानस के लिए सुगम बनाया। इस आलेख में

मूल कन्नड़ पदों और उनके सूक्ष्म हिंदी भाषाई-दार्शनिक विश्लेषण के माध्यम से कनकदास के तात्विक पदों की अंतर्निहित ज्ञान-मीमांसा और तत्व-मीमांसा को उद्घाटित किया गया है।

भारतीय दर्शन की यह विशेषता रही है कि वह केवल बौद्धिक विलासिता का विषय न रहकर 'जीवन जीने की कला' के रूप में विकसित हुआ है। मध्यकाल में जब उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों के भाष्य केवल संस्कृत के पंडितों और विशिष्ट मठों तक सीमित हो चुके थे, तब भक्ति आंदोलन ने दर्शन का लोकतांत्रिकरण किया। कर्नाटक में इस वैचारिक पुनर्जागरण का नेतृत्व 'हरिदास आंदोलन' ने किया। इस आंदोलन में **व्यासतीर्थ (व्यासराज)** के शिष्य **संत कनकदास** का स्थान दार्शनिक गहराई की दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट है।

कनकदास केवल एक नामजप करने वाले भक्त नहीं थे, बल्कि वे तर्कशास्त्र, व्याकरण और मीमांसा के गहरे ज्ञाता थे। एक गैर-ब्राह्मण पृष्ठभूमि (कुरुबा समुदाय) से आने के कारण उनकी आध्यात्मिक साधना में किसी भी प्रकार का शास्त्रीय दुराग्रह नहीं था। उनके द्वारा रचित गीतों में जो दार्शनिक पद हैं, उन्हें **'तात्विक पद'** कहा जाता है। इन पदों में उन्होंने अध्यात्म को जीवन के व्यावहारिक यथार्थ से जोड़कर प्रस्तुत किया है।

1) कनकदास की माया-मीमांसा:

अद्वैत वेदांत में माया को 'अनिर्वचनीय' और संसार को 'मिथ्या' माना गया है, जबकि द्वैत वेदांत में माया को ईश्वर की एक वास्तविक शक्ति (इच्छाशक्ति) के रूप में स्वीकार किया गया है। कनकदास ने माया की इस दार्शनिक गुत्थी को मनुष्य के अहंकार और इंद्रिय-बोध से जोड़कर एक अद्‌भुत पद की रचना की, जिसे कन्नड़ साहित्य में दर्शन का शिखर माना जाता है।

उनका सुप्रसिद्ध तात्विक पद **"नी मायेयोलगो, माये निन्नोलगो....."** द्रष्टव्य है:

"ನೀ ಮಾಯೆಯೊಳಗೋ, ಮಾಯೆ ನಿನ್ನೊಳಗೋ?
ನೀ ಕಾಯದೊಳಗೋ, ಕಾಯ ನಿನ್ನೊಳಗೋ?
ಜಗವು ಕಣ್ಣೊಳಗೋ, ಕಣ್ಣು ಜಗದೊಳಗೋ?
ಜಗವೂ ಕಣ್ಣೂ ಎರಡೂ ಮನದೊಳಗೋ?" [1]

*****

"नी मायेयोळगो, माये निन्नोळगो?
नी कायदोळगो, काय निन्नोळगो?
जगवु कण्णोळगो, कण्णु जगदोळगो?
जगवू कण्णू एरडू मनदोळगो?"[1]

"हे प्रभु! क्या तुम माया के भीतर हो या यह माया तुम्हारे भीतर है? क्या तुम इस शरीर के भीतर वास करते हो या यह शरीर तुम्हारे भीतर समाया हुआ है? यह दृश्य जगत हमारी आँखों के भीतर है या हमारी आँखें इस जगत के भीतर हैं? या फिर यह जगत और आँखें, दोनों ही हमारे मन के भीतर स्थित हैं?"

कनकदास यहाँ ज्ञान-मीमांसा का एक अत्यंत आधुनिक प्रश्न उठा रहे हैं, जो पश्चिमी दर्शन में इमैनुएल कांट या जॉर्ज बर्कले के प्रत्ययवाद की याद दिलाता है। वे पूछते हैं कि ज्ञाता और ज्ञेय का वास्तविक संबंध क्या है? यदि मन न हो, तो न आँखें संसार को देख सकती हैं और न शरीर का बोध हो सकता है। अतः, कनकदास निष्कर्ष निकालते हैं कि 'माया' कोई बाहरी वस्तु नहीं है, बल्कि वह मनुष्य का अहंकार और उसका भ्रमित मन है, जो ईश्वर की वास्तविक सत्ता को देखने से रोकता है।

2) जीव-ब्रह्म भेद और ईश्वर की सर्वव्यापकता:

माध्वाचार्य के द्वैत दर्शन के अनुसार पांच प्रकार के शाश्वत भेद (पंचभेद) हैं: जीव-ईश्वर भेद, जीव-जीव भेद, जड़-ईश्वर भेद, जड़-जीव भेद और जड़-जड़ भेद। कनकदास इस दार्शनिक 'भेद' को स्वीकार करते हैं कि जीव कभी ब्रह्म नहीं हो सकता, परंतु वे इस भेद के भीतर छिपी ईश्वर की 'सर्वव्यापकता' को कभी ओझल नहीं होने देते।

ईश्वर की सर्वव्यापकता और मनुष्य की अज्ञानता को दर्शाते हुए वे अपने पद **"अणु अनंतरूपदलि चेल्लुविहा"** में लिखते हैं:

"ಎಲ್ಲಾ ಕಡೆಯಲಿ ತುಂಬಿಹ ದೇವನು ಎನ್ನೊಳು ಇರನೇ ಮಾನವ?
ಕಲ್ಲಿನೊಳಗಣ ಕಪ್ಪೆಗೆ ಅನ್ನವ ತಂದು ಕೊಡುವವನು ಬೇರೆ ಇಹನೇ?" [2]

*****

"ಎಲ್ಲಾ ಕಡೆಯಲಿ ತುಂಬಿಹ ದೇವನು ಎನ್ನೊಳು ಇರನೆ ಮಾನವ?
ಕಲ್ಲಿನೊಳಗಣ ಕಪ್ಪೆಗೆ ಅನ್ನವ ತಂದು ಕೊಡುವವನು ಬೇರೆ ಇಹನೆ?"

"जो ईश्वर प्रत्येक स्थान पर पूरी तरह व्याप्त है, हे मनुष्य! क्या वह मेरे भीतर नहीं होगा? पत्थर के भीतर छिपे मेंढक तक को जो भोजन पहुँचाता है, क्या वह कोई दूसरा है?"

यहाँ कनकदास जीव और ईश्वर के संबंध को 'संरक्षक और संरक्षित' के रूप में देखते हैं। पत्थर के भीतर बंद मेंढक (कल्लू बंडैया संधि) का उदाहरण लोक-संस्कृति से लिया गया है। दार्शनिक स्तर पर पत्थर जड़ प्रकृति का प्रतीक है और मेंढक अचेतन या असहाय जीव का। यदि ईश्वर उस अत्यंत संकीर्ण और गुप्त स्थान पर भी जीव का पोषण कर सकता है, तो वह सर्वव्यापी है। कनकदास का तात्विक संदेश यह है कि

जीव को अपनी सीमित सत्ता पर अहंकार नहीं करना चाहिए, बल्कि सर्वव्यापक ब्रह्म (आदिकेशव) के प्रति पूर्ण शरणागति (प्रपत्ति) का भाव रखना चाहिए।

3) 'मुंडिगे' (Mystical Riddles) - कनकदास की रहस्यवादी तत्व-मीमांसा:

हरिदास साहित्य में **'मुंडिगे'** (Mundige) उन पदों को कहा जाता है जो जान बूझकर पहेलीनुमा, प्रतीकात्मक और विरोधाभासी शैली में लिखे जाते हैं। संत कनकदास इस विधा के अप्रतिम आचार्य थे। मुंडिगे का उद्देश्य पाठक की बुद्धि को झकझोरना और उसे सतही अर्थ से हटाकर गहरे तात्विक अर्थ की ओर ले जाना होता है।

कनकदास की एक अत्यंत प्रसिद्ध दार्शनिक मुंडिगे द्रष्टव्य है, जिसमें उन्होंने सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय की प्रक्रिया को रहस्यवादी प्रतीकों में बांधा है:

"ಬಾಯೊಳಗಿಹ ಗಂಡನ ನಿಜ ತಮ್ಮನ ತಾಯಿ ಪಿತನ ಮಡದಿಯ ಧರಸಿದನ;
ಶಿರದಲಿ ಹೊತ್ತವನ ಕೊಂದವನ ಮಗನ ತಂದೆಯ ತಲೆಯಲಿ ನರ್ತಿಸುವ..." [3]

*****

बायोगळिह् गंडन निज तम्मन तायि पितन मडदिय धरसिदन;
शिरदलि होत्तवन कोंदवन मगन तंदेय तलेयलि नर्तिसुव...

इस पहेली का मूल संबंध सृष्टि की उत्पत्ति, प्रकृति की शक्ति, और अंततः परमात्मा (आदिकेशव) की सर्वोच्चता और प्रलय की प्रक्रिया से है। हरिदास दार्शनिकों के अनुसार, इसे पौराणिक और आध्यात्मिक प्रतीकों के माध्यम से सुलझाया जाता है।

यहाँ 'मुंह के भीतर' का अर्थ 'वाक्' (वाणी/सरस्वती) से है। वाणी के पति कौन हैं? ब्रह्मा जी।उनका सगा छोटा भाई के रूप में यहाँ 'प्राण' या 'वायु देव' को संकेत किया गया है, या फिर रुद्र (शिव) को। इस पूरी सृष्टि की जो मूल माता है, वह है 'प्रकृति' या 'माया' (महालक्ष्मी), जो कि परमपिता नारायण की पत्नी हैं। वह परमात्मा (विष्णु/कृष्ण) जिसने इस संपूर्ण प्रकृति/माया को अपने भीतर धारण किया हुआ है।

यह हिस्सा सीधे तौर पर प्रलय, अहंकार के नाश और परमात्मा की आनंदमयी लीला (नृत्य) को दर्शाता है। पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करने वाले कौन हैं? शेषनाग, उसको मारनेवाले गरुड़ हैं। शेषनाग के संतान के सिर पर (कालिया नाग के सिर पर) नृत्य करने वाले श्रीकृष्ण (आदिकेशव) की ओर संकेत करता है, जो दार्शनिक रूप से, 'नाग का सिर' मनुष्य के अहंकार और वासनाओं का प्रतीक है। परमात्मा जब जीव के भीतर जाग्रत होते हैं, तो वे उसके सारे संशयों, कर्मों और अहंकार को कुचलकर उसके मस्तक (सहस्रार चक्र) पर आनंद का नृत्य करते हैं।

4) कर्म सिद्धांत और व्यावहारिक आचरण की शुद्धि:

कनकदास भाग्यवादी नहीं थे, न ही वे संसार को छोड़कर जंगलों में भागने वाले वैराग्य के समर्थक थे। उनके तात्विक पदों में 'कर्म सिद्धांत' की अत्यंत तार्किक व्याख्या मिलती है। वे मानते हैं कि मनुष्य का वर्तमान जीवन उसके पूर्व कर्मों का प्रतिफल है, परंतु भक्ति के माध्यम से वह कर्मों के बंधन (प्रारब्ध) से मुक्त हो सकता है।

अपने प्रसिद्ध पद **"तल्लनिसदिरु कंद्या तालु मनवे"** में वे मन को धैर्य रखने का उपदेश देते हुए कर्म और विश्वास का तात्विक समन्वय प्रस्तुत करते हैं:

"ತಲ್ಲಣಿಸದಿರು ಕಂಡ್ಯ ತಾಳು ಮನವೇ, ಎಲ್ಲರನು ಕಾಯುವನು ಇನಿತು ಸಂಶಯಬೇಡ...
ಬೆಟ್ಟದ ತುದಿಯಲ್ಲಿ ಹುಟ್ಟಿದ ವೃಕ್ಷಕ್ಕೆ ನೀರನೆರೆದವರು ಯಾರೋ ಪೇಳಿರಯ್ಯ?
ಹುಟ್ಟಿಸಿದ ದೇವನು ಹೊಣೆಗಾರನಲ್ಲವೇ, ಗಟ್ಟಿ ನಂಬುಗೆಯಿಡು ನೀ ಮನವೇ." [4]

*****

तल्लणिसदिरु कण्ड्य ताळु मनवे, एल्लरनु कायुवनु इनितु संशयबेड...
बेट्टद तुदियल्लि हुट्टिद वृक्षक्के नीरनेरेदवरु यारो पेळिरय्य?
हुट्टिसिद देवनु होणेगारनल्लवे, गट्टि नम्बुगेयिडु नी मनवे।

"हे मेरे मन! तू व्याकुल मत हो, थोड़ा धीरज रख। वह ईश्वर सबकी रक्षा करेगा, इसमें रत्ती भर भी संदेह मत कर। मुझे यह बताओ कि पहाड़ की ऊँची चोटी पर स्वतः उगे हुए वृक्ष की जड़ों में पानी डालने कौन गया था?, जिस परमेश्वर ने हमें इस संसार में जीवन दिया है, क्या हमारे भरण-पोषण और सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी उसकी है? अवश्य है! इसलिए हे मेरे मन, तू सांसारिक दुखों और चिंताओं से व्याकुल होना छोड़ दे और उस विधाता पर अटूट व दृढ़ विश्वास रख।"

यह पद केवल सांत्वना का गीत नहीं है, बल्कि इसके भीतर 'ईश्वरीय विधान' की तत्व-मीमांसा छिपी है। पहाड़ की चोटी पर उगे वृक्ष को न कोई सींचता न उसकी देखभाल करता है, फिर भी वह फलता-फूलता है। कनकदास यहाँ समझाते हैं कि प्रकृति की प्रत्येक क्रिया के पीछे एक वैश्विक चेतना कार्य कर रही है। मनुष्य जब तक यह सोचता है कि "मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ" (कर्ताभाव), तब तक वह दुखी रहता है। जैसे ही वह इस कर्ताभाव को छोड़कर ईश्वर की सार्वभौमिक सत्ता को स्वीकार कर लेता है, वह निर्भय हो जाता है।

5) अंध-परंपराओं का दार्शनिक खंडन:

कनकदास के तात्विक पदों का एक बड़ा हिस्सा ज्ञान की प्रामाणिकता पर विचार करता है। वे पूछते हैं कि वास्तविक ज्ञान क्या है? क्या वेदों को कंठस्थ कर लेना या तीर्थों में स्नान कर लेना ज्ञान है? कनकदास

बाह्य ज्ञान (संसार जनित ज्ञान) को अपूर्ण मानते हैं और **'अपरोक्षानुभूति'** को ही वास्तविक ज्ञान स्वीकार करते हैं।

पवित्रता के झूठे दंभ और आंतरिक अज्ञानता पर चोट करते हुए वे अपने एक पद में लिखते हैं:

"ಉದರ ವೈರಾಗ್ಯವಿದು ನಮ್ಮ ತನುವು, ಒಳಗಣ್ಣು ತೆರೆಯದವಗೆ ಜ್ಞಾನವೆಲ್ಲಿಯದು?
ಜಪವನು ಮಾಡಿದರೇನು ಜಗವನು ಅರಿತು, ಕಪಟ ಭಕುತಿಯು ಮುಕ್ತಿಗೆ ದಾರಿಯಲ್ಲ..." [5]

*****

उदर वैराग्यविदु नम्म तनुवु, ओळगण्णु तरेयदवगे ज्ञानवेल्लियदु?
जपवनु माडिदरेनु जगवनु अरितु, कपट भकुतियु मुक्तिगे दारियल्ल...

"यह हमारा शरीर तो केवल पेट भरने के लिए वैराग्य का स्वांग रचता है; जिस मनुष्य की भीतर की आँख (अंतर्दृष्टि) नहीं खुली, उसे वास्तविक ज्ञान कहाँ से मिल सकता है? संसार को जाने बिना केवल माला जपने से क्या लाभ? यह कपटपूर्ण भक्ति मोक्ष का मार्ग नहीं हो सकती।"

कनकदास यहाँ **'अंतर्दृष्टि' (ओळगण्णु)** की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। दार्शनिक दृष्टि से, यह बुद्धि का शुद्धिकरण है। जब तक बुद्धि पर राग-द्वेष और वासनाओं का पर्दा पड़ा है, तब तक मनुष्य जो भी देखता है, वह आधा सत्य होता है। वास्तविक ज्ञान तब घटित होता है जब साधक अपने अंतःकरण को स्वच्छ कर लेता है। कनकदास का यह विचार उपनिषदों के "तमसो मा ज्योतिर्गमय" के व्यावहारिक रूप को दर्शाता है।

6) सामाजिक न्याय की तत्व-मीमांसा:

कनकदास के **"कुल कुल कुलवेन्दु"** पद को अक्सर केवल एक सामाजिक सुधार के गीत के रूप में देखा जाता है, परंतु उसकी नींव अत्यंत गहरे दार्शनिक सिद्धांतों पर टिकी है। कनकदास सामाजिक न्याय को किसी राजनीतिक अधिकार के रूप में नहीं मांगते, बल्कि वे इसे 'आत्मा की एकता' और 'पंचमहाभूतों की समानता' के तत्व-मीमांसा के आधार पर सिद्ध करते हैं।

"ಆತ್ಮ ಯಾವ ಕುಲ? ಜೀವ ಯಾವ ಕುಲ? ಪಂಚೇಂದ್ರಿಯಗಳ ಕುಲ ಪೇಳಿರಯ್ಯ!
ಒಡಲೊಳಗಿನ ಪ್ರಾಣ ವಾಯುಗೆ ಕುಲವುಂಟೇ? ಜಗದೊಡೆಯನ ನಂಬಿದವನೇ ಕುಲಜನು..." [6]

*****

आत्म याव कुल? जीव याव कुल? पंचेन्द्रियगळ कुल पेळिरय्या!
ओडलोळगिन प्राण वायुगे कुलवुण्टे? जगदोडेयन नंबिदवने कुलजनु...

"मुझे बताओ कि आत्मा का कौन सा कुल है? जीव की कौन सी जाति है? और हमारी इन पांचों ज्ञानेंद्रियों का कौन सा कुल है, कोई तो समझाओ! इस शरीर के भीतर बहने वाली प्राणवायु (श्वास) की क्या कोई जाति होती है? वास्तव में, जो उस जगत के स्वामी (ईश्वर) पर अटूट विश्वास रखता है, वही सच्चे कुल वाला है।"

कनकदास ने यहाँ मनुष्य की सत्ता को तीन स्तरों पर विश्लेषित किया है।

1. **जैविक स्तर :** ज्ञानेंद्रियाँ और प्राणवायु - इनकी कोई जाति नहीं होती, ये सभी मनुष्यों में समान हैं।
2. **आध्यात्मिक स्तर :** आत्मा और जीव - ये परमात्मा के अंश हैं, अतः शुद्ध और निर्गुण हैं।
3. **धार्मिक स्तर :** वास्तविक श्रेष्ठता जन्म से नहीं, बल्कि श्रद्धा से तय होती है।

तत्व-मीमांसा के अनुसार, यदि आत्मा निर्गुण और निराकार है, तो शरीर के जन्म के आधार पर किसी को अछूत या निम्न मानना ईश्वर की बनाई मूल सृष्टि के नियमों का उल्लंघन है। कनकदास ने इस पद के माध्यम से वेदांत को सामाजिक समरसता का सबसे बड़ा हथियार बना दिया।

उपसंहार :

निष्कर्षतः संत कनकदास के तात्विक पदों का यह विस्तृत अनुशीलन यह प्रमाणित करता है कि वे भारतीय दर्शन के इतिहास में एक अनूठे **'लोक-दार्शनिक'** थे। उन्होंने दर्शनशास्त्र को अकादमिक बहसों और संस्कृत की क्लिष्ट पोथियों से मुक्त करके उसे खेतों की माटी, हाट-बाजारों के मुहावरों और लोक-धुनों के माध्यम से जनसाधारण के जीवन का अंग बना दिया।

उनके तात्विक पद ईश्वर की सर्वव्यापकता को स्थापित करते हुए मनुष्य को आंतरिक शुद्धि, कर्म के गौरव और सामाजिक समरसता की सीख देते हैं। उनका साहित्य किसी एक कालखंड या संप्रदाय की धरोहर नहीं है, बल्कि वह संपूर्ण मानवता को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला एक शाश्वत और जीवंत ज्ञान-प्रदीप है, जिसकी लौ आज के उत्तर-आधुनिक युग में भी उतनी ही देदीप्यमान और प्रासंगिक है।

संदर्भ सूची:

1. कनकदास साहित्य संपुट (खंड 1: कीर्तनेगलु), टी. एन. नागरत्ना (संपादक), कन्नड़ एवं संस्कृति निदेशालय, कर्नाटक सरकार, 2002, पृ. 114.
2. कनकदास साहित्य संपुट (खंड 1: कीर्तनेगलु), टी. एन. नागरत्ना (संपादक), कन्नड़ एवं संस्कृति निदेशालय, कर्नाटक सरकार, 2002, पृ. 112.
3. कनकदासर कीर्तनेगलु मत्तु मुंडिगेगलु, प्रो. सुधाकर (संपादक), कन्नड़ एवं संस्कृति निदेशालय, कर्नाटक सरकार, 1999, पृ. 284

4. कनकदास साहित्य संपुट (खंड 1: कीर्तनेगलु), टी. एन. नागरत्ना (संपादक), कन्नड़ एवं संस्कृति निदेशालय, कर्नाटक सरकार, 2002, पृ. 112.

5. दासर पदगळु, पी. गुरुराव (सं.), श्रीमन् मध्व सिद्धांत ग्रंथालय. उडुपी, 1987, पृ. 87.

6. कनकदास साहित्य संपुट (खंड 1: कीर्तनेगलु), टी. एन. नागरत्ना (संपादक), कन्नड़ एवं संस्कृति निदेशालय, कर्नाटक सरकार, 2002, पृ. 22.

****